



कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजस्व विभाग का प्रधान अधिकारी समाहर्ता

रंजना यादव

शोध छात्रा, संस्कृत विभाग,
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

शोधसार-

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में समाहर्ता को राजस्व विभाग का प्रधान अधिकारी तथा राज्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण तीर्थों में स्थान दिया गया है। उसका मुख्य कार्य राज्य की आय-व्यय व्यवस्था का संचालन, करों का संग्रह, व्यापार एवं वाणिज्य का नियंत्रण तथा आर्थिक गतिविधियों की सतत निगरानी करना था। मौर्यकालीन प्रशासन में राज्य की समृद्धि और सुचारु शासन के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती थी, जिसकी पूर्ति मुख्यतः कर और राजस्व से होती थी। समाहर्ता इन संसाधनों के संग्रह, संरक्षण और उचित उपयोग के लिए उत्तरदायी था। वह केवल कर-वसूली तक सीमित नहीं था, बल्कि आयात-निर्यात, देशी-विदेशी व्यापार, माप-तौल, कृषि, पशुपालन, खनन, मुद्रा तथा मंदिर-प्रबन्ध जैसे विविध आर्थिक क्षेत्रों पर भी उसका नियंत्रण था। उसके अधीन अनेक अध्यक्ष नियुक्त किए जाते थे, जो अपने-अपने विभागों के विशेषज्ञ होकर प्रशासनिक कार्यों को व्यवस्थित रूप से संचालित करते थे। इस प्रकार समाहर्ता सम्पूर्ण आर्थिक संगठन का केन्द्रीय अधिकारी था। यह व्यवस्था मौर्यकालीन प्रशासन की सुव्यवस्थित, संगठित तथा दूरदर्शी आर्थिक नीति को स्पष्ट रूप से प्रतिबिम्बित करती है।

कुंजी शब्द-

कौटिल्य, अर्थशास्त्र, समाहर्ता, राजस्व विभाग, मौर्यकालीन प्रशासन, कर-संग्रह, व्यापार नियंत्रण, आर्थिक प्रशासन, अध्यक्ष, राज्य व्यवस्था

प्रस्तावना-

कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार, समाहर्ता राजस्व विभाग का प्रमुख अधिकारी था। राज्य की आय-व्यय व्यवस्था, कर संग्रह, व्यापार का नियंत्रण तथा आर्थिक गतिविधियों की निगरानी उसके अधिकार क्षेत्र में आती थी। इस प्रकार समाहर्ता राज्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण तीर्थों में से एक माना गया है¹, क्योंकि जनपदों (प्रदेशों) के शासन और आर्थिक संगठन का बड़ा भाग उसी के अधीन संचालित होता था। मौर्यकालीन प्रशासन में समाहर्ता राजस्व विभाग का प्रधान अधिकारी था। यह पद अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था क्योंकि राज्य की समृद्धि और साम्राज्य के सुचारु संचालन के लिए पर्याप्त धन

की आवश्यकता होती थी। इस धन का मुख्य स्रोत कर और राजस्व होते थे, जिन्हें एकत्रित करने, उनका सही लेखा-जोखा रखने और राज्य की आवश्यकताओं के अनुसार उनका उपयोग करने की जिम्मेदारी समाहर्ता पर होती थी। समाहर्ता केवल कर वसूलने वाला अधिकारी ही नहीं था, बल्कि वह व्यापार और वाणिज्य पर भी नियंत्रण रखता था। देशी और विदेशी व्यापार से प्राप्त होने वाले कर, आयात-निर्यात की व्यवस्था तथा सरकारी आय-व्यय का संतुलन इसी विभाग के अंतर्गत आता था। इसके अधीन अनेक उपाधिकारियों (अध्यक्षों) की नियुक्ति की जाती थी। ये अध्यक्ष अपने-अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ होते थे और समाहर्ता को कार्य सम्पन्न कराने में सहयोग करते थे। समाहर्ता के अधीन बीस विभाग होते थे, जिनका संचालन विभिन्न अध्यक्षों द्वारा किया जाता था। ये अध्यक्ष अपने-अपने क्षेत्र जैसे कर-वसूली, माप-तौल, कृषि, पशुपालन, व्यापार, खनन, मुद्रा, मंदिर-प्रबन्ध आदि के लिए उत्तरदायी थे। इस प्रकार, समाहर्ता केवल कर वसूली तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण आर्थिक जीवन के संगठन और नियंत्रण का दायित्व निभाता था। इस व्यवस्था से यह स्पष्ट होता है कि मौर्यकालीन प्रशासन न केवल संगठित था, बल्कि उसने समाज के हर आर्थिक पहलू पर गहरी दृष्टि रखी थी।

शुल्काध्यक्ष-²

मौर्यकाल में व्यापार और वाणिज्य राज्य की आर्थिक व्यवस्था का अत्यन्त महत्वपूर्ण आधार थे। राज्य की आय का एक बड़ा भाग व्यापार से प्राप्त होने वाले करों पर निर्भर करता था। इसलिए व्यापार से सम्बन्धित करों की नियमित वसूली और उनका सुव्यवस्थित संचालन राज्य के प्रशासन का मुख्य दायित्व था। इसी कर-व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए शुल्काध्यक्ष नामक अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। शुल्काध्यक्ष का प्रमुख कार्य व्यापारियों से निर्धारित करों की वसूली करना, उनके लेन-देन पर राज्य की ओर से निगरानी रखना तथा कहीं भी अवैध रूप से कर चोरी न होने देना था। वह यह सुनिश्चित करता था कि व्यापारी राज्य द्वारा निश्चित कर समय पर दें तथा कर-वसूली की प्रक्रिया में कोई अनियमितता या भ्रष्टाचार न होने पाए। इस प्रकार शुल्काध्यक्ष राज्य की राजस्व-व्यवस्था का एक अनिवार्य अंग था, जो व्यापारिक गतिविधियों को नियंत्रित कर राज्य को आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

पौतवाध्यक्ष-³

मौर्यकालीन प्रशासन में 'पौतवाध्यक्ष' नामक अधिकारी तौल और माप संबंधी व्यवस्था का प्रभारी होता था। उस समय वस्तुओं का लेन-देन तय माप और तौल के आधार पर होता था, अर्थात् अनाज, धातु, वस्त्र और अन्य व्यापारिक सामान की कीमत निर्धारित करने के लिए सही माप-तौल का होना आवश्यक था। पौतवाध्यक्ष यह सुनिश्चित करता था कि व्यापारी वास्तविक और शुद्ध माप-तौल का ही उपयोग करें और किसी भी प्रकार की मिलावट, छल या धोखाधड़ी न करें। यदि किसी व्यापारी द्वारा गलत भार या माप का प्रयोग पाया जाता था तो उस पर नियमों के अनुसार दण्ड या जुर्माना लगाया जाता था। इस प्रकार पौतवाध्यक्ष व्यापार में निष्पक्षता, पारदर्शिता और विश्वसनीयता बनाए रखने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था, जिससे राज्य की आर्थिक व्यवस्था में संतुलन और विश्वास बना रहता था।

मानाध्यक्ष-⁴

मौर्यकाल में समय, कैलेंडर तथा मापन-पद्धति से जुड़ी व्यवस्थाएँ भी राज्य के नियंत्रण में रहती थीं, क्योंकि व्यापार, कृषि, धार्मिक अनुष्ठान और प्रशासनिक कार्यक्रम सभी का संचालन नियत समय और निश्चित मापों के अनुसार होता था। इन व्यवस्थाओं की देखरेख करने वाला अधिकारी 'मानाध्यक्ष' था। मानाध्यक्ष यह ध्यान रखता था कि समय और माप की सरकारी पद्धति को सही रूप में लागू किया जाए, तथा राज्य में एक समान मानक का पालन किया जाए। वर्ष, ऋतु, माह, सप्ताह अथवा दिन-रात के विभाग, पंचांग, तिथि-निर्धारण आदि जैसी समय-गणना भी राज्य की ओर से विधिवत निर्धारित की जाती थी, और इन सबकी शुद्धता तथा एकरूपता की जवाबदेही मानाध्यक्ष पर होती थी। इस प्रकार मानाध्यक्ष न केवल समय-निर्धारण संबंधी प्रणाली को नियमित रखता था बल्कि राज्य में वैज्ञानिक व व्यवस्थित मापन-पद्धति की स्थापना एवं संरक्षा द्वारा प्रशासन की सुचारु कार्यप्रणाली सुनिश्चित करता था।

सूत्राध्यक्ष-⁵

मौर्यकालीन शासन-व्यवस्था में 'सूत्राध्यक्ष' का पद सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था। यह अधिकारी समाज के उन वर्गों का संरक्षण करता था जो किसी कारणवश निर्भर या असहाय हो गए थे, जैसे-विधवाएँ, अनाथ, कैदी, वृद्ध दासियाँ आदि। ऐसे लोगों को आत्मनिर्भर बनाने तथा उनकी आजीविका सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी सूत्राध्यक्ष की थी। वह उन्हें पुरुषार्थ से जुड़े विभिन्न घरेलू व कुटीर उद्योगों में नियोजित करता था, जैसे-सूत कातने का कार्य, कपड़ा बुनना, रस्सी बनाना, कवच आदि तैयार करना। इससे न केवल उन्हें रोजगार मिलता था बल्कि वे अपना निर्वाह स्वयं कर सकें, इसके लिए आर्थिक आधार भी प्राप्त होता था। इस प्रकार सूत्राध्यक्ष का विभाग समाज में पुनर्वास, संरक्षण एवं सामाजिक सुरक्षा जैसी मानवीय नीतियों के व्यावहारिक क्रियान्वयन का माध्यम था, जो उस समय के शासन की सामाजिक संवेदनशीलता को भी स्पष्ट करता है।

सीताध्यक्ष-⁶

मौर्यकालीन शासन में कृषि को अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता था। अधिकांश जनसंख्या कृषि से ही आजीविका प्राप्त करती थी तथा राज्य की आय का मुख्य स्रोत भी कृषि-उत्पादन और उससे जुड़े कर ही थे। इसी कारण कृषि संबंधी सभी नीतियों और व्यवस्थाओं की देखभाल के लिए 'सीताध्यक्ष' नामक अधिकारी नियुक्त किया जाता था। सीताध्यक्ष राज्य की भूमि के संरक्षण, खेती-बाड़ी के संचालन और कृषि-उन्नति से जुड़ी सभी योजनाओं के कार्यान्वयन का प्रमुख था। वह इस बात का ध्यान रखता था कि राजकीय भूमि पर उचित समय पर खेती हो, सिंचाई, बीज, हल-बैल आदि की व्यवस्थाएँ सही प्रकार से की जाएँ तथा आवश्यकता पड़ने पर दासों, मजदूरों और अन्य श्रमिकों को कृषि-कार्यों में लगाया जाए। चूँकि मौर्य साम्राज्य में आर्थिक संरचना का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आधार कृषि था, इसलिए सीताध्यक्ष की भूमिका मात्र प्रशासनिक न होकर साम्राज्य की आर्थिक स्थिरता, उत्पादन वृद्धि और समाज की खाद्य-आवश्यकताओं की पूर्ति से भी सीधे जुड़ी हुई थी। इस दृष्टि से सीताध्यक्ष का पद मौर्यकालीन विशिष्ट एवं अत्यन्त प्रभावशाली पद था।

सुराध्यक्ष-⁷

मौर्यकाल में “सुराध्यक्ष” नामक अधिकारी मदिरा (शराब) से सम्बन्धित सभी व्यवस्थाओं का प्रमुख होता था। उस समय शराब केवल मनोरंजन अथवा उपभोग की वस्तु नहीं थी, बल्कि यह राज्य के लिए आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत भी थी। इसलिए इसके निर्माण, बिक्री, मूल्य-निर्धारण तथा उपभोग पर पूर्ण नियंत्रण राज्य रखता था। सुराध्यक्ष यह सुनिश्चित करता था कि शराब वैध रूप से ही तैयार की जाए, अवैध ढंग से इसका व्यापार न हो तथा जो भी मदिरा बेची जाए वह राज्य द्वारा निर्धारित मानकों के अनुरूप हो। यदि कोई व्यापारी चोरी-छिपे शराब बना या बेचता था, अथवा इससे अनियंत्रित सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न होती थी, तो सुराध्यक्ष कानून के अनुसार उचित दण्ड देता था। इस प्रकार सुराध्यक्ष का पद न केवल राजस्व-वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण था, बल्कि सामाजिक अनुशासन और नियंत्रण बनाए रखने में भी उसकी भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण थी।

सूनाध्यक्ष-⁸

मौर्यकाल में पशु-बलि और मांस-उद्योग पर राज्य का नियंत्रण था। इस व्यवस्था का दायित्व ‘सूनाध्यक्ष’ नामक अधिकारी पर होता था। सूनाध्यक्ष बूचड़खानों की संपूर्ण व्यवस्था देखता था। किस प्रकार के पशुओं को किस समय और कब मारा जा सकता है, तथा किनकी हत्या निषिद्ध थी इन सभी बातों का निर्धारण राज्य द्वारा किया गया था। सूनाध्यक्ष इन नियमों का पालन करवाता तथा सुनिश्चित करता था कि पशु-पक्षियों की हत्या निर्दिष्ट नियमों और मानकों के अनुसार ही हो। यदि कहीं अवैध ढंग से पशुओं की हत्या या अनियमितता होती, तो सूनाध्यक्ष उसे रोकता और दोषियों को दण्डित भी करता था। इस प्रकार यह अधिकारी न केवल मांस-निर्माण की शुद्धता और नियंत्रण रखता था, बल्कि पशु-हत्या से सम्बन्धित धार्मिक, नैतिक और आर्थिक संतुलन को बनाए रखने में भी राज्य की ओर से महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

गणिकाध्यक्ष-⁹

मौर्यकाल में “गणिकाध्यक्ष” उस अधिकारी को कहा जाता था जो वेश्याओं (गणिकाओं) के प्रबंधन और उनके नियोजन का प्रभारी होता था। उस समय वेश्याओं का समाज में केवल मनोरंजन या व्यक्तिगत सुख-सुविधा के लिए ही नहीं, बल्कि राजनीतिक और राजकीय उद्देश्यों के लिए भी उपयोग किया जाता था। उदाहरण के लिए, संघों और सामंतों को वश में करने, उनकी नीतियों या व्यवहार को प्रभावित करने तथा राज्य के हित साधन के लिए वेश्याओं का प्रयोग किया जाता था। इसके अतिरिक्त, गणिकाओं को राजा और दरबार की सेवा-सुविधाओं के लिए भी नियोजित किया जाता था। गणिकाध्यक्ष यह सुनिश्चित करता था कि गणिकाओं का प्रशिक्षण, नियोजन और कार्य संचालन विधिपूर्वक हो तथा उनके उपयोग में किसी प्रकार की अव्यवस्था या अनियमितता न हो। इस प्रकार गणिकाध्यक्ष का पद केवल सामाजिक दृष्टि से नहीं, बल्कि राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था।

मुद्राध्यक्ष-¹⁰

मौर्यकाल में “मुद्राध्यक्ष” वह अधिकारी था जो मुद्रा, अर्थात् सिक्कों और मुद्रा-प्रणाली से संबंधित सभी कार्यों का प्रभारी होता था। उसका मुख्य दायित्व यह सुनिश्चित करना था कि राज्य की मुद्रा का निर्माण, वितरण और नियंत्रण सुव्यवस्थित

रूप से हो। विदेश से आने-जाने वाले व्यापारी और यात्री भी राज्य की मुद्रा का प्रयोग करते थे, इसलिए मुद्राध्यक्ष उनकी आवश्यकता के अनुसार राजकीय मुद्रा उपलब्ध कराता और यह देखता था कि इसका दुरुपयोग न हो। इसके अलावा, मुद्रा की शुद्धता, उसकी मात्रा और मूल्य निर्धारण जैसी व्यवस्थाएँ भी मुद्राध्यक्ष के नियंत्रण में रहती थीं। इस प्रकार मुद्राध्यक्ष का पद राज्य की आर्थिक स्थिरता, व्यापारिक विश्वसनीयता और वित्तीय नियंत्रण बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण था।

विवीताध्यक्ष-¹¹

मौर्यकाल में “विवीताध्यक्ष” उस अधिकारी को कहा जाता था जो गोचर भूमि, अर्थात् चरागाहों और पशुपालन से संबंधित सभी व्यवस्थाओं का प्रभारी होता था। उसका कार्य केवल पशुओं के लिए चरागाह उपलब्ध कराना ही नहीं था, बल्कि चरागाहों की सुरक्षा सुनिश्चित करना भी उसकी जिम्मेदारी थी। इसके अतिरिक्त, वह तालाब और कुओं का निर्माण कर पानी की व्यवस्था करता था, जंगलों और रास्तों की देखभाल करता था ताकि पशु और लोग सुरक्षित रूप से चरागाह तक पहुँच सकें। विवीताध्यक्ष व्यापारियों और यात्रा करने वालों को डाकुओं और अन्य खतरों से बचाने की जिम्मेदारी भी निभाता था। इस प्रकार विवीताध्यक्ष का पद कृषि और पशुपालन आधारित अर्थव्यवस्था में उत्पादन, सुरक्षा और सुविधा सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण था।

नावाध्यक्ष-¹²

मौर्यकाल में “नावाध्यक्ष” उस अधिकारी को कहा जाता था जो जलमार्गों, नदियों, समुद्र-तटों और महासागरों में नौकाओं और जहाजों से संबंधित सभी व्यवस्थाओं का प्रभारी होता था। उसका मुख्य कार्य जलमार्गों पर सुरक्षित और व्यवस्थित परिवहन सुनिश्चित करना था। यह अधिकारी यह देखता था कि नाव और जहाज समय पर उपलब्ध हों, उनका संचालन सुव्यवस्थित हो, तथा यात्रियों और माल की सुरक्षा बनी रहे। इसके साथ ही नावाध्यक्ष यह भी तय करता था कि नाव या जहाज से यात्रा करने पर कितना किराया लिया जाएगा। इस प्रकार, नावाध्यक्ष का पद व्यापार, यातायात और माल-वाहन के सुचारु संचालन में अत्यंत महत्वपूर्ण था और राज्य की आर्थिक और प्रशासनिक कार्यप्रणाली में उसकी भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती थी।

गोऽध्यक्ष-¹³

मौर्यकाल में “गोऽध्यक्ष” वह अधिकारी था जो गायों और अन्य उपयोगी पशुओं की देखभाल और प्रबंधन का प्रभारी होता था। उस समय राज्य की ओर से बड़े-बड़े गौशालाओं (पशुपालन केंद्रों) का संचालन किया जाता था, जिनमें गायों, बैलों और अन्य घरेलू उपयोगी पशुओं की सुरक्षा, पोषण और प्रजनन की व्यवस्था होती थी। गोऽध्यक्ष यह सुनिश्चित करता था कि इन पशुओं को पर्याप्त चारा, पानी और आश्रय मिले तथा उनके स्वास्थ्य की नियमित देखभाल हो। इसके अतिरिक्त, वह यह भी देखता था कि पशु चोरी, नुकसान या किसी प्रकार की अनियमितता से सुरक्षित रहें। इस प्रकार गोऽध्यक्ष का

पद न केवल पशुपालन और कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण था, बल्कि राज्य की सामाजिक और धार्मिक गतिविधियों में उपयोगी पशुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

अश्वध्यक्ष-¹⁴

मौर्यकाल में “अश्वध्यक्ष” वह अधिकारी था जो घोड़ों के प्रबंधन और देखभाल का प्रभारी होता था। घोड़े उस समय सैनिक और युद्ध रणनीति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते थे, क्योंकि युद्ध में गति, सेना का संचालन और घुड़सवारी पर निर्भरता बहुत अधिक थी। अश्वध्यक्ष का कार्य घोड़ों का पालन-पोषण करना, उनकी नस्ल सुधार से संबंधित व्यवस्थाएँ करना, तथा उन्हें युद्ध और अन्य सैन्य गतिविधियों के लिए प्रशिक्षण देना था। इसके अलावा, वह यह भी सुनिश्चित करता था कि घोड़े स्वस्थ, मजबूत और युद्ध के लिए तैयार रहें। इस प्रकार अश्वध्यक्ष का पद न केवल सेना की सामरिक शक्ति बनाए रखने के लिए आवश्यक था, बल्कि राज्य की सुरक्षा और युद्ध-क्षमता को सुनिश्चित करने में भी उसकी भूमिका महत्वपूर्ण थी।

हस्त्यध्यक्ष-¹⁵

मौर्यकाल में “हस्त्यध्यक्ष” वह अधिकारी था जो हाथियों के प्रबंधन और देखभाल का प्रभारी होता था। हाथियों का युद्ध में विशेष महत्व था, इसलिए उनकी संख्या, स्वास्थ्य और प्रशिक्षण राज्य के लिए अत्यंत आवश्यक थे। हस्त्यध्यक्ष यह सुनिश्चित करता था कि जंगलों से हाथियों को पकड़वाया जाए, उनका पालन-पोषण उचित रूप से किया जाए और उन्हें युद्ध या अन्य शाही कार्यों के लिए प्रशिक्षित किया जाए। इसके अतिरिक्त, बड़े कामकाजी या उपयोगी पशुओं जैसे ऊँट, खच्चर आदि के प्रबंधन के लिए भी अलग-अलग अधिकारी नियुक्त होते थे, क्योंकि प्रत्येक पशु की आवश्यकताएँ और उपयोग भिन्न थे। इस प्रकार हस्त्यध्यक्ष का पद सेना की सामरिक क्षमता, शाही संचालन और आर्थिक उपयोगिता सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

कुप्याध्यक्ष-¹⁶

मौर्यकाल में “कुप्याध्यक्ष” वह अधिकारी था जो प्राकृतिक संसाधनों और कच्चे माल के संग्रहण तथा उनके वितरण का प्रभारी होता था। उसका मुख्य कार्य यह सुनिश्चित करना था कि जंगलों से लकड़ी, औषधियाँ, राल, कत्था और अन्य आवश्यक कच्चे माल को एकत्रित कर कारखानों या कार्यशालाओं तक पहुँचाया जाए। यह प्रक्रिया इसलिए आवश्यक थी ताकि इन कच्चे माल से राज्य की आवश्यकता अनुसार उपयोगी वस्तुएँ जैसे औषधि, निर्माण सामग्री या अन्य उद्योग उत्पाद बनाए जा सकें। कुप्याध्यक्ष न केवल संसाधनों के उचित संग्रहण और वितरण की व्यवस्था करता था, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता था कि प्राकृतिक संसाधनों का दोहन व्यवस्थित और संतुलित तरीके से किया जाए। इस प्रकार कुप्याध्यक्ष का पद राज्य की आर्थिक गतिविधियों, उद्योग और सामरिक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण था।

पण्याध्यक्ष-¹⁷

मौर्यकाल में “पण्याध्यक्ष” वह अधिकारी था जो देशी और विदेशी व्यापार की समग्र व्यवस्था और नियंत्रण का प्रभारी होता था। उसका मुख्य दायित्व यह सुनिश्चित करना था कि राज्य द्वारा अधिकृत या निर्मित वस्तुओं की बिक्री सुव्यवस्थित रूप से हो और व्यापार में किसी प्रकार की अनियमितता या धोखाधड़ी न हो। पण्याध्यक्ष यह देखता था कि राज्य के उद्योगों और कारखानों द्वारा तैयार वस्तुएँ सही मूल्य और समय पर बाजार में उपलब्ध हों, और विदेशी व्यापारियों द्वारा आयात-निर्यात के नियमों का पालन हो। इसके अलावा, वह व्यापारिक कर, शुल्क और व्यापारिक लेन-देन पर भी निगरानी रखता था। इस प्रकार पण्याध्यक्ष का पद राज्य की आर्थिक स्थिरता, व्यापारिक नीति और उत्पादन-व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण था।

लक्षणाध्यक्ष-¹⁸

मौर्यकाल में “लक्षणाध्यक्ष” वह अधिकारी था जो सिक्कों की गुणवत्ता और सम्पूर्ण मुद्रा व्यवस्था का प्रभारी होता था। उस समय मुख्य मुद्रा के रूप में “पण” नामक चाँदी का सिक्का प्रचलित था, जिसका प्रयोग व्यापार, कर वसूली और अन्य वित्तीय लेन-देन में किया जाता था। लक्षणाध्यक्ष यह सुनिश्चित करता था कि सभी सिक्के शुद्ध चाँदी के बने हों, उनका भार और आकार निर्धारित मानकों के अनुसार हो, तथा नकली सिक्कों का प्रवेश न हो। इसके अतिरिक्त, वह राज्य की मुद्रा-व्यवस्था का संचालन करता और मुद्रा की उपलब्धता, वितरण और लेन-देन में समुचित नियंत्रण बनाए रखता था। इस प्रकार लक्षणाध्यक्ष का पद राज्य की आर्थिक स्थिरता, व्यापारिक विश्वसनीयता और वित्तीय अनुशासन सुनिश्चित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण था।

आकराध्यक्ष-¹⁹

मौर्यकाल में “आकराध्यक्ष” वह अधिकारी था जो खानों से धातुओं और खनिजों के उत्खनन और उनकी आपूर्ति का प्रभारी होता था। उसका मुख्य कार्य यह सुनिश्चित करना था कि खनिज और धातु स्रोतों से सुरक्षित और नियमित रूप से सामग्री निकाली जाए और राज्य के कारखानों या आवश्यक कार्यों तक पहुँचाई जाए। आकराध्यक्ष के अधीन विभिन्न उपअधिकारी भी नियुक्त होते थे, जैसे-लोहाध्यक्ष (लोहा), लवणाध्यक्ष (नमक), सुवर्णाध्यक्ष (सोना) आदि, जो अपने-अपने धातु या खनिज के प्रबंधन और निरीक्षण के कार्य में उसकी सहायता करते थे। इस प्रकार आकराध्यक्ष का पद राज्य की उद्योग-व्यवस्था, आर्थिक उत्पादन और सामरिक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण था।

देवताध्यक्ष-²⁰

मौर्यकाल में “देवताध्यक्ष” वह अधिकारी था जो राज्य में विभिन्न देवताओं और उनके मंदिरों के प्रबंधन का प्रभारी होता था। उसका मुख्य कार्य धार्मिक स्थलों की देखभाल करना, मंदिरों की व्यवस्था सुनिश्चित करना, पूजा-पाठ और अनुष्ठानों के सुचारु संचालन की व्यवस्था करना तथा मंदिरों से संबंधित आर्थिक और प्रशासनिक कार्यों की देखरेख करना था। देवताध्यक्ष यह भी देखता था कि मंदिरों में रखी गई संपत्ति, दान और अर्पित सामग्री सुरक्षित रहें और उनका उपयोग

धार्मिक उद्देश्य के अनुसार हो। इस प्रकार देवताध्यक्ष का पद न केवल धार्मिक अनुशासन बनाए रखने में महत्वपूर्ण था, बल्कि समाज में सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गतिविधियों के सुचारु संचालन में भी उसकी भूमिका महत्वपूर्ण थी।

सौवर्णक-²¹

मौर्यकाल में “सौवर्णक” वह अधिकारी था जो टकसाल, अर्थात् सिक्का ढालने की कार्यशाला का प्रमुख होता था। उसका मुख्य कार्य सिक्कों का निर्माण करना और मुद्रा निर्माण की प्रक्रिया को नियंत्रित करना था। वह यह सुनिश्चित करता था कि सिक्के निर्धारित मानकों के अनुसार शुद्ध धातु से बने हों, उनका भार, आकार और आकृति समान रहे, और नकली या घटिया सिक्के निर्माण में न आएँ। इसके अतिरिक्त, सौवर्णक यह भी देखता था कि सिक्के समय पर उपलब्ध हों और राज्य के आर्थिक लेन-देन तथा व्यापारिक गतिविधियों में बाधा न आए। इस प्रकार सौवर्णक का पद राज्य की मुद्रा-व्यवस्था और आर्थिक स्थिरता बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण था।

निष्कर्ष-

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में समाहर्ता को केवल राजस्व संग्रह करने वाला अधिकारी नहीं, बल्कि सम्पूर्ण आर्थिक प्रशासन का केंद्रीय स्तंभ माना गया है। राज्य की आय-व्यय व्यवस्था, कर-संग्रह, व्यापार नियंत्रण, आयात-निर्यात, कृषि, पशुपालन, खनन तथा अन्य आर्थिक गतिविधियों का संचालन उसके अधिकार क्षेत्र में आता था। उसके अधीन विभिन्न अध्यक्षों की नियुक्ति से प्रशासनिक कार्यों को अधिक संगठित और प्रभावी बनाया गया था। इससे स्पष्ट होता है कि मौर्यकालीन शासन व्यवस्था अत्यन्त सुव्यवस्थित, उत्तरदायी और आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ थी। समाहर्ता की भूमिका राज्य की समृद्धि, स्थिरता और जनकल्याण सुनिश्चित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण थी। अतः यह कहा जा सकता है कि कौटिल्य की प्रशासनिक व्यवस्था में समाहर्ता आर्थिक नीति और सुशासन का प्रमुख आधार था।

¹ कौटिल्य अर्थशास्त्र, 2/1

² वहीं, 2/21

³ वहीं, 2/16

⁴ वहीं, 2/20

⁵ वहीं, 2/23

⁶ वहीं, 2/24

⁷ वहीं, 2/25

⁸ वहीं, 2/26

⁹ वहीं, 2/27

¹⁰ वहीं, 2/34

¹¹ वहीं, 2/26

¹² वहीं, 2/30

¹³ वहीं, 2/31

¹⁴ वहीं, 2/17

¹⁵ वहीं, 2/16

¹⁶ वहीं, 2/12

¹⁷ वहीं, 2/12

¹⁸ वहीं, 2/13

¹⁹ वहीं, 2/13

²⁰ वहीं, 2/6

²¹ वहीं, 2/14

सन्दर्भ ग्रन्थसूत्री

- कौटिल्य अर्थशास्त्र एवं शुक्रनीति की राज्य व्यवस्थाएँ, कमलेश अग्रवाल, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2001
- कौटिल्य अर्थशास्त्र, सं०-श्री भारतीय योगी, संस्कृत संस्थान, बरेली, 1995
- धर्मशास्त्र का इतिहास, पाण्डुरंग वामन काणे, हिन्दी अनुवाद अर्जुन चौबे कश्यप, पाँच भाग, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1963
- Kautilya's Artha shastra, R. P. Kangal, University of Bombay, 1960–1965।
- कौटिलीय अर्थशास्त्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2006।
- Hindu Polity, K. P. Jayaswal, Butterworth-Heinemann, 1924।
- प्राचीन भारत की शासन व्यवस्था, A. S. Altekar, Motilal Banarsidass, 1958।
- Ancient Indian Political Thought and Institutions, Ram Sharan Sharma, Manohar Publishers, 1991।